बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 260

टाटा को झटका

राष्ट्रीय कंपनी लॉ अपील पंचाट (एनसीएलएटी) ने साइरस मिस्त्री को टाटा संस के चेयरमैन के पद पर बहाल कर दिया है और उनके उत्तराधिकारी एन चंद्रशेखरन की नियुक्ति को अवैध ठहराया है। यह फैसला समूचे टाटा समूह के लिए भारी अनिश्चितता लेकर आएगा और साथ ही व्यापक कारोबारी जगत भी इससे प्रभावित होगा। टाटा संस को पब्लिक से प्राइवेट किए जाने के निर्णय को भी अवैध ठहराया गया और पलट दिया गया। हालांकि निर्णय का क्रियान्वयन चार सप्ताह के बाद किया जाएगा। इस बीच टाटा समूह को यह अवसर दिया गया है कि वह इसका प्रतिवाद कर सके। समूह पर काफी गंभीर आरोप हैं। इनमें अल्पमत अंशधारकों (शापूरजी पलोनजी समूह उनमें से एक है) का दमन, टाटा संस का कुप्रबंधन और मिस्त्री को चेयरमैन पद से हटाने में अनावश्यक हड़बड़ी शामिल है। यदि एनसीएलएटी का निर्णय समुचित मंच पर बरकरार रहा तो नये प्रबंधन द्वारा लिए गए कई अहम निर्णय जांच के दायरे में आ जाएंगे। इससे अनिश्चितता और बढ़ेगी। टाटा समूह की कंपनियों पर इसका तत्काल नकारात्मक असर देखने को मिला।

एनसीएलएटी के निर्णय से यह स्पष्ट है कि टाटा संस में कई बदलाव होंगे। टाटा समूह पारंपरिक तौर पर देश में कारोबार शासन के बेहतरीन मानक पेश करता रहा है लेकिन एनसीएलएटी का निर्णय बताता है कि टाटा संस में कई तरह की दिक्कतें थीं। यह समूह के लिए और व्यक्तिगत तौर पर रतन टाटा के लिए बड़ा झटका है। पंचाट ने कहा है कि वे समूह में हस्तक्षेप करने से बचें। मिस्त्री की शिकायत थी कि टाटा के साथ मुद्दों पर चर्चा के लिए निदेशकों ने बोर्ड बैठक बीच में छोड़ दी थी और उन्हें टाटा संस के बोर्ड के बजाय मुद्दों की रिपोर्टिंग अलग से टाटा ट्रस्ट को करनी पड़ती थी। ये दोनों बातें एनसीएलएटी के निर्णय में नजर आईं। ऐसे में यह स्पष्ट है कि टाटा ट्रस्ट और टाटा को टाटा संस में अपनी अभिरुचि को समुचित और पारदर्शी ढंग से प्रबंधित करना होगा। उन्हें इस आरोप का जवाब देना होगा कि होल्डिंग कंपनी का परिचालन कंपनियों में अल्पांश हिस्सेदारी वाला न्यास अहम निर्णय लेता है, न कि परिचालन कंपनियों का बोर्ड अथवा मुख्य कार्याधिकारी। यह प्रबंधन की एजेंसी व्यवस्था का प्रदर्शन है जिसका आधी सदी पहले अंत हो चुका है। टाटा समूह का कॉर्पोरेट ढांचा वैसा ही अस्पष्ट है और टाटा संस की दोतिहाई हिस्सेदारी न्यासों के पास है। इसका आधुनिकीकरण आवश्यक है।

बहरहाल, इस निर्णय से चेयरमैन की नियुक्ति और उसे हटाए जाने के बारे में व्यापक प्रश्न उठे हैं। एक ऐसा चेयरमैन जिसने बोर्ड तथा प्रमुख अंशधारकों का भरोसा गंवा दिया है वह कैसे पद पर काम जारी रखेगा? मिस्त्री समूह ने आरोप लगाया था कि चेयरमैन को बिना नोटिस दिए हटाया गया जो अवैध है। परंतु तथ्य तो यह भी है कि टाटा संस के नौ में से सात निदेशकों ने मिस्त्री को हटाने के पक्ष में मत दिया था। उम्मीद की जानी चाहिए कि कार्यपालिका और सर्वोच्च न्यायालय एनसीएलएटी के निर्णय के असर का सावधानी से आकलन करेंगे और जरूरत होने पर उपयुक्त बदलाव करेंगे। पंचाट का यह आकलन पर्याप्त नहीं है कि बहुलांश हिस्सेदारों की मंजूरी से चेयरमैन नियुक्त हो सकता है। अल्पांश धारकों की सहमति की आवश्यकता की बात भी विवादास्पद है। यदि सर्वोच्च न्यायालय इसे पलट नहीं देता तो आम तौर पर कंपनियों पर इस निर्णय के असर के बारे में भी सवाल होना चाहिए। मसलन एनसीएलएटी का जोर है कि अधिसूचना और बिना पंचाट को जानकारी दिए कंपनियों के प्राइवेट होने के बारे में विशिष्ट नियमों के बावजूद, ऐसे मामलों में कंपनी अधिनियम 2013 की मूल आवश्यकताओं का पालन किया जाए। कंपनी मंत्रालय को इस अनिश्चितता को जल्द से जल्द स्पष्ट करना चाहिए।

अजय मोहंती

व्यापार नीति के मोर्चे पर जहां के तहां हम

बीते पांच वर्षों की बात करें तो व्यापार नीति के मामले में देश वहीं खड़ा है जहां से हमने आगे बढ़ने की शुरुआत की थी। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं राहुल खुल्लर

देश की अर्थव्यवस्था संकट में है और सरकार का आर्थिक प्रबंधन आलोचकों के निशाने पर है। इन बातों से अविचलित सरकारी अधिकारी बुनियाद मजबूत होने की बात कहते हैं। यदि हम अपने अविश्वास को एक पल के लिए परे कर दें तो भी यह सवाल तो बरकरार है कि आखिर अर्थव्यवस्था में नई जान फूंकने के लिए क्या नीति है? केवल बुनियादी चीजें ठीक होने से बात नहीं बनेगी। वर्ष 2014 के बाद से विदेश व्यापार के लिए समुचित रणनीति का अभाव सबसे ज्यादा महसूस किया जा रहा है।

वर्ष 2004-14 के दौरान सहारा देने वाली एक नीति मौजूद थी: इसके तहत शेष विश्व के साथ आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा दिया गया, संरक्षण और शुल्क कम किए गए और उद्योग एवं निर्यात क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया गया। मुक्त व्यापार समझौते और व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौतों की मदद से व्यापार और विदेश नीति के लक्ष्यों को जोड़ा गया। हालांकि सन 2014 तक कुछ उनींदापन आने लगा था। परंतु नीतियों में कोई एकरूपता नहीं थी, सार्थक नीति की तो बात ही छोड़ दें। हां, परोक्ष रूप से दिए जा रहे वक्तव्य और निर्यात संवर्द्धन नीतियों के नाम बदलने का सिलसिला अवश्य जारी था। परंतु इससे कोई नीति तो नहीं बनती।

आंकड़े खुद पूरी कहानी बयां करते हैं। सन 2003-04 से एक दशक तक वाणिज्यिक वस्तुओं का निर्यात और आयात क्रमश: 17.3 फीसदी और 19.1 फीसदी वार्षिक की दर से बढ़ा। सन 2013-14 से अब तक के पांच वर्ष में इनकी वार्षिक वृद्धि दर क्रमश: निर्यात के लिए 0.9 फीसदी और आयात के लिए 2.7 फीसदी रही। महा मंदी के आगमन तक व्यापार का विस्तार हो रहा था और मात्रात्मक राहत ने भी इसमें मदद की। अब आप इसे सही समय पर सही नीति मानें या अच्छी तकदीर यह आप पर है।

इसके उलट बीते पांच वर्ष में सरकार ने मानो विपरीत बाह्य परिस्थितियों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है। इसमें कितनी सच्चाई है? इन पांच वर्षों में एशिया से होने वाला निर्यात 20 फीसदी बढ़ा। कुछ देशों का प्रदर्शन तो इससे भी बेहतर रहा। बांग्लादेश का वस्त्र निर्यात इस अवधि में 40 फीसदी बढ़ा। अकेले 2018 में मलेशिया और वियतनाम ने क्रमश: 14 प्रतिशत और 15 प्रतिशत की निर्यात वृद्धि दर्ज की। सच कहा जाए तो कोई विदेश व्यापार नीति थी ही नहीं। तेल कीमतों में गिरावट के रूप में अप्रत्याशित लाभ अवश्य मिला। व्यापार संतुलन बढ़ने के साथ ही यह धारणा बढ़ी कि बाहरी व्यापार में कोई संकट नहीं है। दुख की बात है कि कुछ बातों का पूर्वानुमान नहीं था। वास्तविक विनिमय दर में इजाफा हुआ और नीतिगत प्रतिक्रिया के अभाव में निर्यात स्थिर हो गया।

मेक इन इंडिया पहल को बढ़ावा देकर विनिर्माण और रोजगार में इजाफा लाने का प्रयास किया गया। दुर्भाग्य से मेक इन इंडिया पहल नारा बनकर रह गई। इससे न तो विनिर्माण को गति मिली और न रोजगार को। जब इसकी शुरुआत हुई थी तब आशंका जताई गई थी कि यह अतीत के आयात प्रतिस्थापन जैसा कदम न साबित हो। दुख की बात है कि हुआ भी ऐसा ही। बीते कुछ वर्षों में संरक्षणवाद में निरंतर इजाफा हुआ है। सबसे पहले 2016 में लोहे और इस्पात की वस्तुओं के लिए न्यूनतम आयात मूल्य तय किया गया। इसके बाद जुलाई और सितंबर 2018 में विभिन्न वस्तुओं का आयात शुल्क बढ़ाया गया। जुलाई 2019 के बजट में स्वर्ण समेत 75 वस्तुओं पर शुल्क बढ़ाया गया। लक्ष्य: घरेलू विनिर्माण को बढ़ावा देना।

संक्षेप में कहें तो शुल्क दरों में चरणबद्ध कमी की नीति को उलट दिया गया। ऐसे में भले ही विदेश व्यापार नीति को लेकर कुछ स्पष्ट नहीं कहा गया लेकिन मानसिकता समझी जा सकती है। वाणिज्य मंत्री ने हाल ही में कहा कि लक्ष्य था आयात को कम करके चालू खाते के घाटे पर नियंत्रण करना।

व्यापार संतुलन और चालू खाता घाटे का संबंध विनिमय दर और राजकोषीय घाटे से है। घरेलू विसंगति और नीतिगत निष्क्रियता बढ़े हुए चाले खाता घाटे का कारण रही है। बीते पांच वर्ष के दौरान इन नीतिगत विसंगतियों से निपटने के लिए कुछ खास नहीं किया गया। वर्ष 2018-19 में कोयला आयात बिल 26.2 अरब डॉलर का था जो 2013-14 से 60 फीसदी अधिक था। देश के कुल आयात में कोयले की हिस्सेदारी 5 फीसदी है। घरेलू कोयला उत्पादन जरूरतों का 60 फीसदी ही पूरा कर पाता है। उच्च शिक्षा की त्रासदी देखिए कि भारत हर साल विदेशों में उच्च शिक्षा पर 21 अरब डॉलर खर्च करता है। मात्र पांच वर्ष में यह राशि दोगुनी हो चुकी है। इस अवधि में इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का आयात 70 फीसदी बढ़ा और 2018-19 में यह 56 अरब डॉलर हो गया। औषधि और रसायन क्षेत्र का भी यही किस्सा है।

निर्यात और बाहरी क्षेत्र की इस अनदेखी ने प्रतिस्पर्धा, उत्पादकता और सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि तीनों को प्रभावित किया। अब तो नए संकट भी सामने नजर आने लगे हैं। 2011-12 में उच्चतम व्यापार घाटा 190 अरब डॉलर था जो 2018-19 में 184 अरब डॉलर हो गया। यह 2013-14 के 136 अरब डॉलर से बहुत अधिक है। चिंता की बात यह है कि महज दो वर्ष में व्यापार संतुलन में 70 फीसदी की गिरावट आई है। दूसरा, शुद्ध तेल आयात 2013-14 में 101 अरब डॉलर था और 2018-19 में यह 94 अरब डॉलर का स्तर पार कर गया। यह 2015-16 से लगभग दोगुना है। तेल कीमतों में कमी के बावजूद हम जहां के तहां हैं। तेल कीमतों में गिरावट का भी हम लाभ न ले सके। तीसरा, वर्ष 2013-14 के बाद के पांच वर्ष में भारतीयों द्वारा विदेशों से भेजे जाने वाले धन में 1.5 फीसदी की वृद्धि हुई है। शुद्ध निवेश आय घाटा इस पांच वर्ष की अवधि में 5.8 फीसदी वार्षिक की दर से बढ़ा। नतीजा: हम अब बाहरी धनप्रेषण पर पहले की तुलना में अधिक निर्भर हैं और चालू खाते के घाटे को प्रबंधनीय स्तर पर रखने के लिए अन्य सेवाओं की बाट जोहनी पड़ रही है।

क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक सहयोग साझेदारी से बाहर निकलने का निर्णय खूब चर्चा में रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार एक आवश्यकता को विशेषता बताने का प्रयास कर रही है। देखा जाए तो कोई ऐसी विदेश व्यापार नीति अथवा अन्य नीति नहीं हो सकती है जो उपचारात्मक उपायों के माध्यम से घरेलू नीति की विसंगतियों को दूर करने के लिए प्रयास कर सके। अतीत की ओर वापसी असर हम देख ही चुके हैं।

जलवायु परिवर्तन के खिलाफ जंग अब लाने लगी है रंग

तकनीकी तंत्र

देवांग्शु दत्ता

टाइम पत्रिका की पर्सन ऑफ 2019 ग्रेटा थनबर्ग ऐसी एकमात्र शख्सियत हैं जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र में खड़े होकर दुनिया के नेताओं की आलोचना की। स्वीडन की यह किशोरी अभी मतदान की उम्र से काफी छोटी हैं। न तो वह वैज्ञानिक हैं और न ही नीति निर्माता। जलवायु परिवर्तन की समस्या के खिलाफ उनकी बातों से पूरी दुनिया में एक व्यापक आंदोलन खड़ा करने में मदद मिली है। लेकिन जलवायु परिवर्तन की समस्या के खिलाफ उनकी मुहिम रंग ला रही है और यह एक बड़े आंदोलन का रूप ले रहा है। कई स्थानों पर युवाओं ने इस मुद्दे पर व्यापक जनसभाएं की हैं जिससे अब लोगों का रुझान इस तरफ बढ़ा है। पिछले दशकों के दौरान जलवायु परिवर्तन पर हुई बहस और बैठकों की तुलना में युवाओं का आंदोलन ज्यादा कारगर रहा है। ग्रीनहाउस प्रभाव के कारण धरती का तापमान बढ़ने से जलवायु परिवर्तन हो रहा है। सौर उष्मा के फंसने से पृथ्वी गर्म होती है। दिन के समय वायुमंडल और पृथ्वी की सतह धूप और उष्मा सोखती है। रात के समय पृथ्वी की सतह वायमुंडल में उष्मा छोड़कर ठंडी होती है। इसमें से कार्बन डाई ऑक्साइड और मीथेन जैसी ग्रीनहाउस गैसों की मौजूदगी के कारण कुछ उष्मा सोख ली जाती है। ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ने पर औसत तापमान भी बढ़ता है। इसका एक और भयावह प्रभाव होता है। इससे मौसम के चक्र में बदलाव होता है जिससे बेमौसम चक्रवाती तूफान आते हैं, बर्फ के पिघलने से समुद्रतल का स्तर बढ़ता है, गर्मियों का मौसम औसत से ज्यादा गरम और लंबा होता है। शताब्दियों पहले इस बात को समझ लिया गया था। जोसफ फूरियर जैसे वैज्ञानिकों ने 1820 के दशक में इसकी संभावना पर चर्चा की थी। वर्ष 1903 में रसायन शास्त्र का नोबेल पुरस्कार जीतने वाले स्वैंट ऐरेहीनियस ने वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा दोगुनी होने की संभावना पर उसके प्रभावों के बारे में एक मॉडल बनाया था। जलवायु परिवर्तन शब्द 1900 के दशक की शुरुआत में आया था। (एरेहीनियस थनबर्ग के दूर के पूर्वज हैं।)

औद्योगिक क्रांति के बाद विकसित अधिकांश प्रौद्योगिकी जीवाश्म ईंधन पर आधारित है। जीवाश्म ईंधन जलने से कार्बन डाईऑक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसें पैदा होती हैं। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के कारण जलवायु परिवर्तन प्रभावों के सटीक मॉडल की शुरुआत 50 साल पहले 1970 के दशक में हुई थी। वैज्ञानिक संदर्भ में ये अध्ययन सटीक थे। एक नए अध्ययन के मुताबिक 1970 से 2007 के बीच जारी किए गए 17 मॉडलों में से 14 में ऐसे प्रभावों का अनुमान जताया गया था जो हम आज देख रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बारे में वैज्ञानिकों के बीच आम सहमति है और हर वह आंकड़ा जो हम माप सकते हैं, वह यही बताता है कि चीजें बदतर हो रही हैं। साल दर साल औसत तापमान बढ़ रहा है। आर्कटिक और हिमनदों में मौजूद बर्फ सोखी गई मीथेन और दूसरी ग्रीनहाउस गैसें छोड़ रही हैं। इससे चीजें और बदतर हो रही हैं। इससे बड़ी मात्रा में जीवजंतुओं की प्रजातियों का लुप्तप्राय होना शुरू हो गया है।

हिमालय और आर्कटिक जैसी नाजुक पारिस्थिकी तंत्रों पर इसका भयावह असर हो सकता है। समुद्री जल का स्तर बढ़ने से समुद्र के किनारे बसे शहर और द्वीपसमूह जलमग्न हो जाएंगे। भारत की समुद्री सीमा बहुत व्यापक है और वह उन पांच देशों में शामिल है जो समुद्र का जलस्तर बढ़ने से सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। इनमें बांग्लादेश पहले स्थान पर है।

जलवायु वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर तापमान 1.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ा तो 35 करोड़ लोग सूखे से प्रभावित होंगे और कम से कम 12 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे चले जाएंगे। ऐसा 2030 तक हो सकता है।

दुर्भाग्य से वैज्ञानिक आम सहमति का मतलब भूराजनीतिक आम सहमति नहीं है। दुनियाभर के देशों को इस समस्या से निपटने के लिए उपाय करने की जरूरत है। इसके लिए 2030 तक उत्सर्जन में कम से कम 7.6 फीसदी की सालाना दर से कटौती करनी होगी। यह सैद्धांतिक रूप से संभव है, लेकिन इसके लिए भूराजनीतिक आम सहमति की जरूरत होगी। जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए न केवल नई ग्रीन प्रौद्योगिकी की जरूरत है बल्कि हर देश में इसका क्रियान्वयन जरूरी है। इसकी लागत बहुत ज्यादा है। इसके लिए जीवनशैली में भी बदलाव की जरूरत होगी जिससे हर कोई प्रभावित होगा। जीवाश्म ईंधन की जगह अक्षय ऊर्जा के इस्तेमाल से बिजली और ऊष्मा की लागत बढ़ सकती है। साथ ही इससे ज्यादा मुनाफा कमाने वाले उद्योग (कोयला, तेल एवं गैस, जहाजरानी, वायु परिवहन) नष्ट हो जाएंगे और लाखों लोगों का रोजगार प्रभावित होगा। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में उत्सर्जन में कमी के लिए पूरी अर्थव्यवस्था को बदलना पड़ सकता है जो सस्ती ताप ऊर्जा पर निर्भर हैं।

कई ऐसे धड़े हैं जो इसका विरोध करते हैं। परंपरागत ऊर्जा उद्योगों के अलावा कई राजनीतिज्ञ भी इस वैज्ञानिक वास्तविकता से इनकार करते आए हैं। जलवायु परिवर्तन को खारिज करने वाली राजनेताओं की इस शक्तिशाली लॉबी में उन देशों के राजनेता शामिल हैं जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में शीर्ष पर हैं। साथ ही जीवाश्म ईंधन का निर्यात करने वाले प्रमुख देशों के नेता भी इस जमात का हिस्सा हैं। डॉनल्ड ट्रंप और जेयर बोलसोनारो ने सार्वजनिक रूप से थनबर्ग की उपेक्षा की है। व्लादीमिर पुतिन भी इसे खारिज करते आए हैं।

लेकिन कुछ सकारात्मक बदलाव हुए हैं। ज्यादा सरकारें अब पेरिस समझौते को गंभीरता से ले रही हैं। शायद इसकी वजह यह है कि राजनेताओं के बच्चों ने इसमें पहल शुरू कर दी है। ब्रिटेन ने शून्य उत्सर्जन विधेयक पारित किया है। यूरोपीय संघ पेरिस समझौते का पालन नहीं करने वाले देशों से आयात पर भारी कर लगाने की तैयारी कर रहा है। यह देखना होगा कि अगले कुछ वर्षों में इसका क्या असर देखने को मिलता है। संभव है कि ग्रेटा और उनकी पीढ़ी ने पृथ्वी को जलवायु परिवर्तन की समस्या से बचाने की लड़ाई में फर्क पैदा करने के लिए पर्याप्त कोशिश की है।

कानाफूसी

दंड-बैठक का दंड

मध्य प्रदेश के इंदौर जिले के राऊ कस्बे के लोग घनी आबादी वाले इलाकों में तेज गति से बस चलाने वाले बस चालकों को दंडस्वरूप दंड-बैठक लगाने को कहते हैं। इसकी एक वीडियो क्लिप सोशल मीडिया पर वायरल हुई है। वीडियो में पांच बस चालकों को बस की छत पर दंड-बैठक लगाते देखा जा सकता है। राऊ नगरपालिका के प्रमुख शिवनारायण दींगू कहते हैं कि इंदौर से महू, मानपुर और पीथमपुर तक बस चलाने वाले बस चालक लोगों की जान की परवाह नहीं करते और संकरी सड़कों पर बेहद तेज गति से बसें चलाते हैं। वे जल्दी जाकर पहले सवारी बटोरने के लिए ऐसा करते हैं। उन्होंने कहा कि उनके इतनी हड़बड़ी में बस चलाने से कई लोगों की जान भी जा चुकी है। ऐसे में इस तरह का दंड उन्हें आगाह करेगा कि वे सावधानी से बस चलाएं।

प्लास्टिक के फूलों से जंग

देश में एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक पर प्रतिबंध लग चुका है। परंतु ऐसा लग रहा है कि कुछ सरकारी विभाग एकल इस्तेमाल वाले प्लास्टिक के प्रयोग पर रोक के मामले में सीमा पार कर चुके हैं। कैबिनेट सचिवालय ने हाल ही में रेलवे को एक निर्देश जारी करके कहा कि प्लास्टिक के फूलों और गुलदस्तों के इस्तेमाल को कम या समाप्त किया जाए। यह निर्देश उन संगठनों को प्रसन्न करेगा जिन्होंने लंबे अरसे से प्लास्टिक के फूलों के इस्तेमाल के खिलाफ जंग छेड़ रखी है। उनका आरोप है कि ऐसे फूलों का इस्तेमाल असली फूलों का कारोबार करने वालों की परेशानी का सबब बना हुआ है।

आपका पक्ष

देश में महिला-पुरुष की असमानता गंभीर

महिला और पुरुष समानता में भारत चार पायदान फिसल कर 112वें स्थान पर आ गया है। साल भर पहले भारत का स्थान 108वां था। महिला और पुरुषों के बीच विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ते फासले से संबंधित विश्व आर्थिक मंच की रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई है। महिला और पुरुष अंतर रिपोर्ट में भारत का स्थान चीन के 106, श्रीलंका के 102, नेपाल के 101, ब्राजील के 92, इंडोनेशिया के 85 और बांग्लादेश के 50 से भी नीचे है। इस रिपोर्ट के मुताबिक महिला और पुरुष असमानता को चार कारकों में बांटा गया था जिसमें महिलाओं को उपलब्ध आर्थिक अवसर, राजनीतिक सशक्तीकरण, शैक्षणिक उपलब्धियां तथा स्वास्थ्य एवं जीवन प्रत्याशा है। इस रिपोर्ट के आंकड़े बेहद चिंतनीय है क्योंकि भारत अपने पड़ोसी देश चीन, नेपाल, श्रीलंका और बांग्लादेश से भी नीचे है। देश में महिलाओं को समान अवसर प्राप्त नहीं होते हैं जिससे उनकी भूमिका सिर्फ गृहिणी तक सिमट कर रह जाती है। कार्यक्षेत्र में देखें तो निजी क्षेत्रों में महिलाओं को रोजगार प्राप्त करने में काफी मशक्कत करनी पड़ती है। इसकी मुख्य वजह महिला कर्मियों द्वारा छुट्टी की अधिक मांग करना, गर्भवती होने पर लंबी छुट्टी पर जाना तथा घर की जिम्मेदारी संभालने के लिए छुट्टी की मांग करना आदि है। इसके अलावा महिला कर्मियों को रात की पाली में काम करने में परेशानी भी एक वजह है। विश्व आर्थिक मंच के अनुसार महिला और पुरुष के बीच विभिन्न क्षेत्रों में अंतर पाटने के लिए करीब 100 साल लगेंगे। इसका अर्थ यह है कि भारत आज भी अन्य देशों के मुकाबले 100 साल पीछे चल रहा है। देश के विकास के लिए महिलाओं की समान भागीदारी बहुत जरूरी है। देश और समाज तभी सशक्त हो सकेगा जब महिला भी आर्थिक रूप से सशक्त होंगी।

प्रियंका कुमारी, नई दिल्ली

महिला और पुरुष समानता में भारत चार अंक फिसलकर 112वें स्थान पर आ गया

सोशल मीडिया पर समर्थन-विरोध गलत

देश के कुछ राज्यों में नागरिकता संशोधन कानून को लेकर काफी विरोध प्रदर्शन हो रहा है। इस दौरान कुछ जगहों पर हिंसा भी हुई है। कुछ विश्वविद्यालयों तक इस कानून के विरोध की आंच भी पहुंच गई और छात्र-छात्राएं अपनी पढ़ाई को दरकिनार कर इस कानून का विरोध करने के लिए सड़कों पर उतर आए। लोकतंत्र में सरकार की नीतियों का विरोध करने का अधिकार सभी नागरिकों को है लेकिन विरोध की आड़ में हिंसा पर उतारू होना सरासर गलत है। नागरिकता कानून को कुछ लोग धर्म के नाम पर और कुछ लोग राजनीति करने के लिए इसका समर्थन और विरोध कर रहे हैं। विरोध करने वाले सड़कों पर उतर रहे हैं वहीं कुछ लोग सोशल मीडिया पर इसका विरोध कर रहे हैं। इस कानून के विरोध या समर्थन में लोग सोशल मीडिया पर ऐसी बात कह रहे होंगे जो किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाली हो। सरकार, प्रशासन और पुलिस को सोशल मीडिया पर गंभीरता से नजर रखने के लिए पुख्ता इंतजाम करने चाहिए, ताकि नागरिकता कानून के विरोध में हिंसा की चिंगारी को शरारती तत्त्वों द्वारा सोशल मीडिया के जरिये नहीं भड़काया जा सके। न्यूज चैनलों को भी इस मुद्दे पर बहस करने से बचना चाहिए।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।